अध्याय 8

गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रवाद
(Nationalism under Gandhi's Leadership)

गांधी जी का जीवन

गांधी जी के जीवन को दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. दक्षिण अफ्रीका में उनका संघर्ष (1893-1914) और
2. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका (1915-47),

दक्षिण अफ्रीका में उनके जीवन को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. उदारवादी युग (1893-1905) एवं
2. सत्याग्रह युग (1906-14)।

इस अध्याय में हम गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष पर ही चर्चा करेंगे। जहां उन्होंने नस्लभेद के विरोध में आंदोलन चलाया। गांधी जी 1893 में दक्षिण अफ्रीका गए, अपने एक मित्र दादा अब्दुल्ला का दीवानी मुकदमा लड़ने, लेकिन जाते ही उन्हें नस्लभेद की कड़वाहट को झेलना पड़ा। जब वह डरबन से प्रीटोरिया जा रहे थे, उन्हें एक गोरे ने प्रथम श्रेणी के डिब्बे से जबरदस्ती बाहर कर दिया और सारी रात उन्हें ठंड से कांपते हुए स्टेशन पर ही गुजारनी पड़ी। इसके बाद भी उन्हें अनेक बार अपमान सहना पड़ा, यद्यपि कई बार वह अपनी बात सच सिद्ध करने में सफल रहे। बार-बार हुए अपमान से उन्हें नस्लभेद को मानसिकता समझ में आ गई थी।

जब 1894 में अपना काम पूरा करके, गांधी भारत लौट रहे थे, तभी नटाल राफ ने एक विवादास्पद बिल बना कर नटाल असेम्बली के लिए भारतीयों को मतदान के अधिकार से वंचित कर दिया। गांधीजी ने इस बिल का विरोध किया और संगठन बनाने का सुझाव दिया जो लोगों के अधिकारों की रक्षा कर सके। 22 मई, 1894 को गांधी जी के नेतृत्व में नटाल इंडियन कांग्रेस (एन.आई.सी) की स्थापना की गई ताकि नटाल में भारतीय व्यापारियों के साथ हो रहे भेदभाव को समाप्त किया जा सके। गांधी ने एक याचिका तैयार की जिसमें 10,000 लोग सम्मिलत थे और जिसे लंदन में उपनिवेशों के सेक्रेट्री ऑफ स्टेट के पास भेजा गया। यही वह तरीका था जो गांधी ने 1905 तक अपनाया, इस आशा के साथ कि रंगभेदी कानून एवं व्यवहार समाप्त होगा। 1906 से आंदोलन का स्वरुप बदला और 'सत्यग्रह' का मार्ग अपनाया गया। जो मुद्दे उठाये गए, वह इस प्रकार थे—

1. ट्रांसवाल अध्यादेश (1906) के विरुद्ध जिसका अंतर्गत पंजीकरण कराना अनिवार्य था और भारतीय को पास (पहचान पत्र) 1907-08 रखना था।
2. आव्रजन पर प्रतिबन्ध (1913) के विरुद्ध।
3. गैर इसाई परम्परा से हुए विवाह को मान्यता प्रदान न करने को घोषणा (1913)के विरुद्ध।
4. असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत मज़दूरों पर 3 पाउंड का कर लगाने के विरुद्ध।

इन सभी मुद्दों पर गांधीजी ने विरोध का जो तरीका अपनाया वह सत्याग्रह था, जिसके अन्तर्गत कुछ कानूनों का शान्तिपूर्वक विरोध किया गया, धरना दिया गया, हड़ताल किया गया, सभाओं का आयोजन किया गया और उपवास रखा गया। फिनिक्स आश्रम एवं टॉलस्टाय आश्रम में गांधीजी ने सत्यग्रहियों को प्रशिक्षण दिया। 1915 में गांधी के भारत लौटने से पहले अनेक रंगभेदी कानूनों को वापस ले लिया गया, कुछ तो गांधी के सत्याग्रह के कारण और कुछ अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण, लेकिन रंगभेद पूरी तरह से अभी समाप्त नहीं हुआ था।

दक्षिण अफ्रीका में जब गांधी का आंदोलन चला तो इसमें अनेक वर्गों, जातियों, भाषा समूहों की भागीदारी रही। हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, ईसाई, गुजराती, तमिल, उच्च व्यापारी वर्ग, वकील, खदान मजदूर आदि। ने सत्याग्रह में भाग लिया। इस प्रकार भारत के बाहर गांधी ने भारतीयों के एक बड़े समूह का नेतृत्व किया। दक्षिण अफ्रीका में सफल दौरे के बाद जब वह भारत लौटे तो भारत में उनका स्वागत एक राष्ट्रीय नेता के रूप में हुआ। गांधी से पहले के नेता तिलक, गोखले, लाला लाजपत राय आदि किसी क्षेत्र विशेष में अधिक लोकप्रिय थे।

जनआंदोलन की गांधीवादी विचारधारा एवं तरीके

सत्याग्रह

सत्याग्रह एक प्रकार का प्रतिरोध है, जिसमें स्वंय को कष्ट देकर विरोधियों का हृदय और सोच बदला जाता है। यह अन्याय पर आधारित कानून के विरुद्ध संघर्ष का एक माध्यम है, जिसमें कोई निर्णय लेते समय ईश्वर को गवाह बनाया जाता है और फिर परिणाम की चिंता नहीं होती। अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध यह एक अहिंसात्मक संघर्ष है, सत्याग्रह का लक्ष्य शंतिपूण प्रतिरोध से झगड़े का निपटारा करना होता है। इसे व्यक्तिगत स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक इस्तेमाल किया जा सकता है।

सत्याग्रह का माध्यम परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग हो सकता है, जैसे—उपवास, प्रार्थना, वस्त्र बुनाना, हड़ताल, असहयोग एवं सविनय अवज्ञा आदि। महात्मा गांधी काफी शिक्षित थे और भगवद्गीता के दर्शनों से प्रेरित थे। उन्होंने बुद्ध, ईसा मसीह, टोलोस्टाय, थेरियन एवं इमरशन के दर्शनों को भी पढ़ा था। यद्यपि वह इन सबसे प्रेरित थे, फिर भी संघर्ष का उन्होंने अपना ही तरीका निकाला। उनका सबसे बड़ा अस्त्र, सत्य एवं सामान्य बुद्धि (कॉमन सेंस) था। सत्य की खोज मानव हमेशा से ही करता रहा है, लेकिन कोई भी यह दावे से नहीं कहा सकता है कि उसने सम्पूर्ण सत्य की खोज कर ली है। या फिर यह कि उसका सत्य ही सत्य है। इसलिए अपने तथाकथित सत्य के लिए हिंसा का इस्तेमाल पाप है।

गांधी का सत्याग्रह दर्शन चार मौलिक बिन्दुओं पर अधारित था:

- सम्पूर्ण सत्य
- सम्पूर्ण प्रेम
- सम्पूर्ण अनुशासन
- सम्पूर्ण न्याय

गांधी ने हिंसा के दो रूप बताए-अनिवारक या सहनशील एवं शारिरिक (Physical form) हिंसा के भौतिक या शारिरिक रूप में युद्ध, दंगा, हत्या, बलात्कार आदि आता है, जबकि अनविारक हिंसा में

शोषण, क्रोध, नफरत, भेदभाव, इर्ष्या, अन्याय आदि आता है। अनिवारक हिंसा ही गुस्से एवं नफरत की भावना को जन्म देता है। जिससे शारीरिक हिंसा का सूत्रपात होता है। जब तक हम हिंसा के मूल कारणें की अनदेखी करते रहेंगे तब तक संसार में हिंसा जारी रहेगी। गांधी ने चेतावनी दी ''युद्ध के न होने का यह अर्थ नहीं है कि शान्ति है, और शहरों में दंगे-फसाद न होने का अर्थ यह नहीं है कि सौहार्द्रपूर्ण माहौल है''

'क्रोध', हिंसा का मूल कारण है, चाहे वह अनिवारक हो या शारीरिक। क्रोध एक शक्तिशाली भावना है। गांधी चाहते थे कि क्रोध का प्रयोग उर्जा के रूप में किया जाए जो मानव समाज के लिए एक सरकारात्मक कार्य होगा क्योंकि क्रोध, प्रेरणा का स्रोत होता है। गांधी के अनुसार लोगों को मारने से, सम्पत्ति को नष्ट करने से समस्या का समाधान नहीं निकलता। गांधी के लिए जितना ध्येय महत्वपूर्ण था उतना ही माध्यम (means)। उनका तर्क था कि मांगों को मनवा लेना महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि उसे कैसे मनवाया गया।

गांधी सभी मानव को एक मानते थे और उन्हें जाति, रंग, लिंग या किसी अन्य आधार पर मानव को बांटना पसन्द नहीं था। उन्होंने एक नये प्रकार की प्रार्थना अपने आश्रमों में शुरू की, जिनमें सभी धर्मों-हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, ईसाई के पवित्र ग्रंथों की प्रार्थनाएं पढ़ी जातीं। गांधी ने अस्पृश्यता का कड़ा विरोध किया और इसे ईश्वर एवं मानव के प्रति अपराध घोषित किया। उन्होंने दलितों को एक सम्मानजनक नाम-'हरिजन' दिया। उनका तर्क था 'अछूतों' को 'हरिजन' इसलिए कहा जाना चाहिए क्योंकि शताब्दियों से उनका शोषण होता आया है। हिन्दू समाज के अन्य लोग उस समय 'हरिजन' (हरि का जन) कहलाने को योग्य होंगे, जब वह दलितों का शोषण रोक देंगे और प्रायश्चित करेंगे।

गांधी के सामाजिक विचार

अपनी पुस्तक *हिंद स्वराज* (1909) में गांधी ने लिखा है कि देश का वास्तविक शत्रु अंग्रेजी राज नहीं है, बल्कि समस्त आधुनिक औद्योगिक सभ्यता है। उन्होंने सरकारी संस्थाओं, वकीलों, चिकित्सकों तथा न्यायालयों की इस आधार पर आलोचना की कि यह सब गरीबों का शोषण करते हैं। वह बड़े उद्योगों और मशीनों के विरोधी थे जो बेरोजगारी उत्पन्न करती है। इन्हीं आधारों पर अनेक इतिहासकार गांधी के दर्शन को 'अव्यावहारिक' और 'आदर्शवादी' आदि की संज्ञा देने लगे। लेकिन सावधानी से गांधी जी के विचार को अगर पढ़ा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि समय की आवश्यकता के अनुसार अपने मौलिक विचारधारा से हटे बगैर, गांधी जी बदलने को तैयार रहते थे। वास्तव में वह परिवर्तनवादी थे, रूढ़िवादी नहीं। वह तो यह भी नहीं चाहते थे कि उनके द्वारा लिखित वाक्य जीवित रहे, वह उसे अपनी चिताओं के साथ जला देना चाहते थे। उनका दर्शन सत्य एवं 'बुद्धि' (common Sense) पर आधारित था।

बाद में गांधी ने स्पष्ट भी किया कि बड़े और मशीनी उद्योगों से उन्हें कोई बैर नहीं है, जब तक कि यह गरीबों की जीविका पर प्रहार नहीं कराता। प्रारम्भ में गांधी ने जमींदारी प्रथा का विरोध नहीं किया। बाद में स्पष्ट कर दिया कि इस व्यवस्था को समाप्त होना ही होगा। प्रारम्भ में वह धर्म के बिना राजनीति को ऐसा मानते थे, जैसे आत्मा के बिना शरीर लेकिन बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि धर्म एक वैयक्तिक मामला है।

जन आंदोलन के तरीके

जब किसी आंदोलन में बड़ी संख्या में एक सामान्य लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए आम जनता की भागीदारी होती है, तब उसे जन आन्दोलन कहा जाता है। ऐसे आंदोलन को एक नेतृत्व दिशा देता है। एक जन आंदोलन में सामूहिक चेतना और आत्म-कार्य (Self activity) का जनता और नेतृत्व के साथ सुन्दर समन्वय होता है।

गांधी का नेतृत्व राष्ट्रीय आंदोलन के अन्य नेताओं से इस अर्थ में भिन्न था कि गांधी लोगों की नब्ज़ से परिचित थे। वह लोगों के मनोभावों, पीड़ा-क्रोध और कुंठा की भलीभांति समझते थे। आमतौर से यह माना जाता है कि गांधी जी ने आन्दोलन प्रारम्भ किये जैसे—रौलट सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन आदि। जबकि ऐसा नहीं है। स्वतंत्रता और विभाजन की पूर्व संध्या पर जब उनसे विभाजन के विरुद्ध जन आंदोलन चलाने को कहा गया तब उन्होंने उत्तर दिया—'मैने जीवन में कभी कोई परिस्थिति उत्पन्न नहीं की।' मेरे पास एक योग्यता है। जो आप में से अनेक लोगों के पास नहीं है। मैं तुरंत ही यह अनुभव कर सकता हूं कि लोगों के दिलों में क्या चल रहा है, और जब मुझे विश्वास हो जाता है कि 'सत्य की शक्ति जाग चुकी है, मैं उस अवसर का लाभ उठाता हूं, एक कार्यक्रम बनाता हूं और लोग साथ आ जाते हैं। लोग कहते हैं कि मैने किसी परिस्थिति की संरचना की, लेकिन मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया सिवाये उसके जो पहले से ही मौजूद था उसे आकार देने के' आज मैं ऐसे स्वयं भावना (healthy fuling) का कोई चिन्ह नहीं देखता।

गांधी जी इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि जन आंदोलन के लिए नेतृत्व की अत्यंत आवश्यकता है। वह जन आंदोलन को ऐसी सेना मानते, जिसमें जनरल और सिपाही दोनों की ही आवश्यकता होती है। वह मानते थे कि साधारण व्यक्ति भी अनुशासन से ऐतिहासिक और राजनैतिक शक्ति बन सकता है। वह हर आन्दोलन के कार्यक्रमों को राजनैतिक एवं वैचारिक दृष्टि से, सावधानीपूर्वक तैयार करते। वह सभी भारतीयों को एक जुट करने का प्रयास करते, कांग्रेस के भीतर की और बाहर भी ताकि साम्राज्यवाद के विरुद्ध मिलकर मुकाबला किया जा सके और अग्रेज़ी सरकार को अलग-थलग किया जा सके। गांधी जी ने अपने प्रत्येक आंदोलन में अंग्रेज़ी सरकार और अंग्रेज़ी जनता में स्पष्ट भेद बनाये रखा और अंग्रेज़ी जनता को कभी अपना शत्रु नहीं माना।

चंपारण सत्याग्रह

1917 का 'चम्पारण सत्याग्रह' गांधी का भारत में पहला सत्याग्रह था। उत्तरी बिहार में स्थित चम्पारण के किसान अंग्रेज बागबान (planters) के साथ हुए करार के अनुसार 'तिनकठिया' व्यवस्था के अन्तर्गत नील की खेती करते (जिसमें अन्तर्गत हर बीस कठ्ठा में से तीन कठ्ठा पर नील की खेती करनी होती) थे। लेकिन अंग्रेज बागबान किसानों के साथ धोखे से काम लेते हुए उन्हें उपज का वास्तविक मूल्य नहीं चुकाते। दूसरी और नील की खेती के अनेक दुष्परिणाम भी सामने आने लगे थे। यद्यपि बागवान किसानों को करार से मुक्ति देने के लिए सहमत हो गए थे, लेकिन बदले में वे भारी हर्जाना चाहते थे। स्थानीय किसान नेता राजकुमार शुक्ल ने महात्मा गांधी को चंपारण आने का न्यौता दिया। दक्षिण अफ्रीका से लौटने (1915) के बाद गांधी ने किसी आंदोलन में भाग नहीं लिया था और गोखले के कहने पर वह भारत का भ्रमण कर रहे थे। लोगों से मिल रहे थे, उनकी समस्याओं को समझ रहे थे। गांधी जी किसी भी विषय को समझे बिना हस्तक्षेप नहीं करते।

जब राजकुमार शुक्ल ने गांधी को चम्पारण आने का न्यौता दिया, गांधी किसानों से स्वंय मिलकर वास्तविक परिस्थिति को समझना चाहते थे। लेकिन चम्पारण के कमिश्नर ने गांधी को तुरंत चम्पारण छोड़ने का आदेश दे डाला। गांधी जी, जो अन्याय को किसी भी परिस्थिति में बर्दाश्त करने के पक्षधर नहीं थे, ने ऐसा करने से इंकार कर दिया और परिणाम भुगतने के लिए तैयार हो गए। इस प्रकार का प्रतिरोध (resistance) और परिणाम भुगतने के लिए हमेशा तत्पर रहना उनकी जीवन शैली बन चुकी थी। उनसे पहले यह हिम्मत शायद ही किसी भारतीय नेता ने दिखाई हो। उधर सरकार असमंजस में थी क्योंकि गांधी को गिरफ्तार करने का अर्थ था उन्हें रातों-रात हीरो बनाना, इसलिए उन्हें चम्पारण में अपना काम करने दिया गया। वह तो हीरो बन ही चुके थे, जब उन्होंने चम्पारन छोड़ने से साफ इंकार कर दिया था।

चम्पारण में गांधी ने किसानों से मिलकर उनकी समस्याओं को सावधानी से उन्हीं की जुबानी

सुना, और यह भी सुनिश्चित किया कि किसान उन्हें सही-सही जानकारी दें। उनके साथ चम्पारण जाने वाले अन्य प्रमुख नेता थे—राजेन्द्र प्रसाद, महादेव देसाई, नरहरि परिख, अनुग्रह नारायण सिन्हा, जे.की. क्रंलानी, मजहर-उल-हक़ और ब्रज किशोर आदि। अन्ततः सरकार ने नील आयोग का गठन किया जिसमें गांधी को भी एक सदस्य बनाया गया। आयोग ने तीनकठिया व्यवस्था को समाप्त करने का और किसानों को उचित मुआवजा दिलाने की सिफारिश की। गांधी ने समझौतावादी नीति अपनाते हुए बागबानों (planters) से अग्रह किया कि वह किसानों से गैर-कानूनी तरीके से वसूले गए रकम का एक-चौथाई भाग ही वापस करे। समझौता गांधीवादी आंदोलन की एक अन्य विशेषता थी।

अहमदाबाद मिल हड़ताल

मजदूरों के हितों में चलाया गया गांधी का पहला आंदोलन अहमदाबाद के सूती मिल मजदूरों का आंदोलन था (1918) जो 'प्लेग बोनस' जारी रखने के लिए चलाया गया था। मिल मालिक, जो भारतीय थे, प्लेग के समापन के बाद प्लेग बोनस को समाप्त करना चाहते थे, जबकि मजदूरों की मांग थी कि यह बोनस जारी रहना चाहिए क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध के कारण महंगाई बढ़ गई थी और उनका जीवन स्तर पहले से कहीं अधिक गिर गया था। गांधी के बीच-बचाव के बाद मिल मालिक और मजदूर एक ट्रिब्युनल के गठन और उसके निर्णय को स्वीकराने के लिए तैयार हो गए थे, लेकिन मिल मालिक अपने वायदे से मुकर गए। गांधी ने मज़दूरों को हड़ताल पर जाने की सलाह दी और वेतन में 35 प्रतिशत की वृद्धि की मांग की। गांधी रोज़ाना मज़दूरों को सम्बोधित करते और उनमें जागरुकता फैलाने के लिए पत्रिका भी निकालते। मज़दूरो के जोश में ठंडापन देखकर उन्होंने भूख हड़ताल की, जो भारत में उनकी पहली भूख हड़ताल थी। गांधी द्वारा चलाए गए आंदोलन के जबरदस्त दबाव में आकर अन्ततः मिल मालिकों को झुकना पड़ा और ट्रिब्युनल को सारी मुद्दे सौंपने पड़े, जिसने 35 प्रतिशत वेतन वृद्धि की घोषणा की।

खेड़ा सत्याग्रह

खेड़ा ज़िला (गुजरात) के किसान खराब उत्पादन के कारण लगान की माफी चाहते थे। 1918 में चले इस आंदोलन का मूल कारण यही था कि उस वर्ष उत्पादन सामान्य से एक-चौथाई से भी कम हुआ था। सरकारी नीति के अनुसार ऐसी परिस्थिति में लगान की माफी का प्रावधान था। गुजरात सभा के अध्यक्षपति हाने को नाते गांधी ने किसानों से लगान न देने को कहा। गांधी के साथ-साथ स्थानीय वकील वल्लभभाई पटेल और इन्दुलाल याज्ञनिक भी गांव-गांव गए और किसानों को समझाया कि वह लगान न दें। सरकार ने जब यह देखा कि लगान वसूलना आसान नहीं होगा तब उसने अधिकारियों को गुप्त आदेश दिए कि लगान केवल उन्हीं से वसूला जाए जो देने की परिसिथित में हैं। इस प्रकार गांधी मुहिम रंग लाई। चम्पारण, अहमदाबाद और खेड़ा ने गांधी के काम करने के तरीके और उनकी विचारधारा से लोगों को परिचित कराया। इन आंदोलनों ने गांधी को भी लोगों की मूल समस्याओं से अवगत कराया। लोगों की शक्ति और कमजोरी को वह करीब से देख सके। कहा जा सकता है कि इन आंदोलनों ने गांधी को भारतीय राजनीति में स्थापित कर दिया।

रौल्ट सत्याग्रह

गैर-सरकारी भारतीय सदस्यों के विरोध के बावजूद 1919 के प्रारम्भ में केंद्रीय विधान परिषद् ने रौल्ट एक्ट पारित कर दिया। एक्ट का उद्देश्य भारतीयों के नागरिक अधिकार का हनन करना था, क्योंकि एक्ट में प्रावधान था कि बिना मुकदमा चलाए ही गिरफ्तार भारतीय को एक विशेष अदालत के द्वारा दो

वर्ष तक कैद की सजा दी जा सकती थी। एक्ट ने पुलिस के हाथ अत्याधिक शाक्ति प्रदान कर दी, जिससे लोगों में भय उत्पन्न होना स्वभाविक था।

लगभग सभी राजनैतिक दलों ने रौल्ट एक्ट का विरोध किया और एक्ट के विरोध में नारा लगाया 'कोई अपील नहीं' 'कोई वकील नहीं' और 'कोई दलील नहीं'। उस समय कांग्रेस पार्टी इस सिथिति में नहीं थी कि इसके विरोध में कोई आंदोलन खड़ा कर सके, इस प्रकार यह काम गांधी को सौपा गया कि वह विरोध का कोई तरीका ढूंढें। गांधी ने सत्याग्रह सभा की स्थापना की, जिसके अध्यक्ष वह स्वंय बने, और होम रूल लीग के कार्यकत्ताओं की सहायता से एक बड़ा जन-आंदोलन तैयार किया। वैसे भी होम रूल लीग के कार्यकर्ता ऐनी बेसेंट से अब ऊब चुके थे, और तिलक भी इंग्लैंड चले गए थे। गांधी ने अनेक मुस्लिभ नेताओं की भी सहायता ली, जिनमें फिरंगी महल (लखनऊ) के अब्दुल बारी, अली बन्धू (मुहम्मद अली जौहर और शौकत अली), वजीर हसन, महमूदाबाद के राजा और मुख्तार अहमद अंसारी प्रमुख थे।

'सत्याग्रह सभा' ने पत्रिकाओं के द्वारा प्रचार-प्रसार का कार्य शुरू किया और एक हस्ताक्षर अभियान भी चलाया, जिनमें सत्याग्रहियों से कुछ वायदे लिए जाते। मार्च और अप्रैल के प्रारम्भ में गांधी ने बंबई, दिल्ली, इलाहाबाद, लखनऊ और दक्षिण भारत के अनेक शहरों की यात्रा की। 16 अप्रैल को देश भर में हड़ताल घोषित किया गया (स्वतंत्रता आंदोलन का पहला राष्ट्रीय आंदोलन)।

सत्याग्रहियों को निम्न लिखित अनुदेश दिये गए —

- हस्ताक्षरकर्ता इस मत से सहमत है कि रौल्ट कानून अन्यायपूर्ण है और मौलिक अधिकारों का हनन करती है।
- हस्ताक्षरकर्ता यह प्रण लेता है कि वह कुछ कानूनों की अवज्ञा करेगा, अर्थात उसे नहीं मानेगा।
- सत्याग्रहों, संघर्ष के दौरान, निडरता के साथ सत्य और अहिंसा पर टिके रहेंगे, और न तो कोई गलत कार्य करेंगे और न ही किसी को हानि पहुंचायें।

यहां बताना दिलचस्प होगा कि अनेक राष्ट्रवादी, जो विधान परिषद् के स्दस्य थे, रौल्ट एक्ट का तो विरोध करते थे। लेकिन उसके विरोध में चलाये जाने वाले आंदोलन (सत्याग्रह) से वह सहमत नहीं थे। इन नेताओं में दिनशा वाचा, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, तेज बहादुर सप्रू और श्रीनिवास शास्त्री प्रमुख हैं। लेकिन हवा का रुख कुछ और ही था, विशेषकर पंजाब में, क्योंकि :

- पंजाब में अंसतोष का एक बड़ा कारण अनाज की बढ़ती कीमत था। 1917 से 1919 के बीच लगभग 100 प्रतिशत मूल्य में वृद्धि हुई, जबकि मज़दूरों, शिल्पियों के वेतन में केवल 20-25 प्रतिशत ही वृद्धि हुई थी।
- पंजाब के मुसलमानों में राजनैतिक जागृति अधिक थी, जिसका एक कारण राष्ट्रवादी साहित्यकारों जैसे ज़फर अली खान और मुहम्मद इकबाल (सारे जहां से अच्छा, और नया शिवाला के कवि) की प्रेरणा थी।
- आर्यसमाजियों का प्रभाव।
- हिन्दू, मुस्लिम और सिख एकता, जिसे जलियांवाला बाग हत्याकांड (देखें बाक्स) के समय देखा जा सकता है।
- लाहौर के बादशाही मस्जिद में पुलिस कमेटी का गठन, जिसने 11 से 14 अप्रैल तक पूरे शहर को अपने नियंत्रण में ले लिया था।

पंजाब के अतिरिक्त, दिल्ली और कलकत्ता भी रौल्ट सत्याग्रह का प्रमुख केंद्र बने। दिल्ली में बेरोजगार कारीगर और निम्न मध्यम वर्ग के हिन्दुओं में मुख्तार अहमद अंसारी और हकीम अजमल खान के नेतृत्व में 30 मार्च से लेकर 18 अप्रैल तक अनेक हड़तालों का आयोजन किया। देश के अन्य भागों में रौल्ट सत्याग्रह के प्रति मिलीजुली प्रतिक्रिया रही। लेकिन जलियांवाला बाग हत्याकांड से देश में शोक की लहर पैदा हो गई और गांधी ने 18 अप्रैल 1989 को आंदोलन वापस ले लिया। गांधी ने

यह स्वीकार किया कि 'रौल्ट सत्याग्रह' उनकी भारी भूल थी और प्रायश्चित स्वरूप वह तीन दिन के उपवास पर बैठे। यद्यपि रौल्ट सत्याग्रह एक्ट को समाप्त कराने में भले ही सफल न हुई हो। लेकिन इतना अवश्य हुआ कि इसने गांधी को अखिल भारतीय स्तर का नेता बना दिया।

जलियांवाला बाग हत्याकांड

13 अप्रैल 1919 को अमृतसार के जलियांवाला बाग में हजारों लोग बैसाखी का त्यौहार मनाने आए थे, जिनमें बड़ी सख्या आस-पास के गांव से आने वालों की भी थी, और उन्हें यह पता भी नहीं था कि अमृतसर में कर्फ्यू घोषित है। अनेक नेता और उनके अनुयायी भी इस बाग में इकठ्ठा हुए। जिनका उद्देश्य स्थानीय नेता डा. सत्यपाल मलिक और डा. सैफुद्दीन किचलु की गिरफ्तार का विरोध करना था। जनरल डायर ने किसी चेतावनी के बिना गोली मारने की आज्ञा दे डाली जिससे सैकड़ों लोगों को मृत्यु हो गई, जबकि सरकार का दावा था कि केवल 379 लोग ही मारे गए। बाग से बाहर जाने का केवल एक ही रास्ता था, जिस पर सेना तैनात थी, जान बचाने के लिए अनेक महिलाओं ने कुंए में छलांग लगा दी और मारी गयीं।

जलियांवाला हत्याकांड ने साम्राजावादी शासन के स्वरुप की पोलें खोल दी। इसकी भर्त्सना विश्वभर में हुई। सरकार की इतनी फजीहत शायद ही पहले कभी हुई हो। दबाव में आकर अन्ततः सरकार को एक पांच आयोग गठित करनी पड़ी, जिसका नेतृत्व हंटर कर रहे थे। जैसा कि समझा जा रहा था, जांच रिपोर्ट में कुछ खास नहीं निकला। पूरी परह से लीपा पोती की गई। इंग्लैंड के एक समाचार पत्र 'द मार्निंग पोस्ट' ने तो जनरल डायर के बचाव के लिए हजारों पाउंड भी इकठ्ठा किए। इंग्लैंड की संसद के उच्च सदन ने तो डायर की भूरी-भूरी प्रशंसा भी की। टैगोर को उनके व्यवहार से इस तरह आघात पहुंचा कि उन्होंने 'नाइटहुड' की उपाधि ही वापस कर दी। उधर गांधी भी गहरे सदमे में थे और उन्होंने आंदोलन स्थगित करने का निर्णय लिया।

खिलाफ़त एवं असहयोग आंदोलन

1919 में घटित अनेक घटनाओं (रौल्ट एक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकांड, खिलाफ़त का मुद्दा और द्वैध शासन का मुद्दा) ने एक अखिल भारतीय जनआंदोलन को जन्म दिया, जो 1920 से 1922 तक चला। यद्यपि यह सभी घटनाएं अलग-अलग थीं, लेकिन इनका सूत्रधार एक था-साम्राज्यवादी शासन। गांव के नेतृत्व में कांग्रेस ने इन सभी मुद्दों को एक राष्ट्रीय धारा में मोड़कर विशाल जनआंदोलन खड़ा किया।

खिलाफत का मुद्दा

'खिलाफ़त' शब्द अरबी भाषा के 'खलीफ़ा' शब्द से बना है, जो अरब और इस्लामी जगत में शासकों के लिए इस्तेमाल किया जाता था। खिलाफ़त का अर्थ खलीफ़ा की संस्था या कार्यालय होता है, न कि विरोध, जैसा कि आमतौर से भारत में समझा जाता है। उर्दू में विरोध के लिए 'मुखालिफ़त' शब्द है।

तुर्की के खलीफ़ा को विश्व के अनेक मुस्लिम (सभी नहीं) मुस्लिम जगत का आध्यात्मिक और राजनैतिक नेता मानते थे। जर्मनी के साथ तुर्की भी प्रथम विश्वयुद्ध में परास्त हुआ। जून 1919 में

विजित देशों (इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका आदि) ने वर्साय (पैरिस के निकट) के स्थान पर जर्मनी पर अपमानजनक सन्धि थोपी। ऐसी ही सन्धि तुर्की के लिए भी तैयार की जा रही थी। इंग्लैंड, फ्रांस और अमेरिका पर दबाव डालने के लिए अनेक मुस्लिम देशों में खिलाफ़त आंदोलन चलाया गया, इस प्रकार यह सर्व-इस्लामी आंदोलन बन गया।

भारत में अली बन्धुओं के नेतृत्व में बम्बई में खिलाफ़त समिति का गठन किया गया। इनमें अन्य प्रमुख नेता थे—हकीम अजमल ख़ान, मुख्तार अहमद अंसारी, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद आदि। मार्च 1920 में पेरिस में मोहम्मद अली जौहर ने मित्र राष्ट्रों के समक्ष अनेक मांगें रखीं, जो इस प्रकार थीं:–

1. मुसलमानों के पवित्र धार्मिक स्थलों पर तुर्की के खलीफ़ा का नियंत्रण रहे।
2. खलीफ़ा के पास इतना क्षेत्र अवश्य बचे कि वह इस्लाम की सुरक्षा कर सके।
3. अरब द्वीप (अरेबिया, सिरिया, इराक़, फिलिस्तिन) पर मुस्लिम शासन ही रहे।

खिलाफ़त समिति की शाखाएं यू.पी. बंगाल, सिंघ और मालाबर में भी स्थापित की गईं, जिनमें अधिकांशतः निम्न मध्यम वर्ग, विशेषकर पत्रकार और 'उलेमा' सम्मिलत थे। इन लोगों ने 17 अक्टूबर 1919 और 19 मार्च 1920 को अखिल भारतीय हड़ताल की घोषणा की और हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। 2 अगस्त, 1920 का दिन खिलाफ़त समिति ने जनआंदोलन का दिन घोषित कर दिया और महात्मा गांधी को इसका नेतृत्व सौंपा।

असहयोग प्रस्ताव

1 अगस्त, 1920 को असहयोग आंदोलन विधिवत रूप से उस समय प्रारम्भ हुआ, जब सारा देश तिलक की मौत का शोक मना रहा था। 4 सितम्बर, 1920 को कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। सी.आर.दास, मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, बिपिनचन्द्र पाल आदि बहिष्कार, विशेषकर विधान परिषद के बहिष्कार के पक्ष में नहीं थे।

बुजुर्ग नेताओं में केवल मोती लाल नेहरू ने ही महात्मा गांधी का साथ दिया। गांधी जी का मानना था कि असहयोग प्रस्ताव के मान लेने से 'स्वराज' को एक वर्ष के भीतर ही प्राप्त किया जा सकता है।

अन्ततः गांधी जी के असहयोग प्रस्ताव को स्वीकृति मिल गई। प्रस्ताव के अनुसार विधान परिषदों का, सरकारी उपाधियों का, अदालतों का, सरकारी शिक्षा संस्थानों का और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना था। स्वदेशी वस्तु निर्मित करने पर विशेष बल दिया गया और आपसी झगड़े के निपटारे के लिए स्थानीय पंचायतों की स्थापना की व्यवस्था की गई। सितम्बर, 1920 में नागपुर में हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में सितम्बर, के प्रस्ताव का अनुमोदन किया गया। इसी अधिवेशन में कांग्रेस पार्टी का, गांधी के नेतृत्व में, पुनर्गठन भी किया गया। केंद्रीय स्तर पर एक कार्यकारिणी परिषद, जिसकी सदस्य संख्या 15 की स्थापना की गई और साथ ही 350 सदस्यीय अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का गठन किया गया और कांग्रेस पार्टी की शाखाएं ज़िला, ब्लाक एवं गांव के स्तर तक खोली गई। इस प्रकार गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस का जनाधार अत्यंत व्यापक हुआ।

गांधी जी और अली बन्धुओं ने देशभर का भ्रमण किया और सैकड़ों जनसभाओं को सम्बोधित किया। हज़ारों की सख्या में छात्रों ने (जनवरी, 1921 में 90,000) स्कूल और कॉलेज छोड़े। शिक्षा का बहिष्कार बंगाल और पंजाब में अधिक सफल रहा। बंबई, यू.पी. बिहार, असम और मद्रास के क्षेत्र भी अधिक सक्रिय थे। आंदोलन के समय अनेक राष्ट्रवादी शिक्षा संस्थानों की स्थापना की गई, जिनमें जामिया मिल्लिया इस्लामिया (पहले अलीगढ़ में फिर दिल्ली में स्थानांतरित किया गया), काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ आदि प्रमुख हैं। अदालतों का भी बहिष्कार किया गया, लेकिन यह उतना सफल नहीं हो पाया, जितना कि शिक्षा संस्थानों का बहिष्कार, फिर भी अनेक जाने-माने वकीलों ने विरोधस्वरूप वकालत छोड़ी, जिनमें सी.आर.दास, मोतीलाल नेहरू, एम.आर.

जयकर, सैफुद्दीन किचलू, वल्लभ भाई पटेल, सी. राज गोपालाचारी, आसफ अली, टी. प्रकाशम आदि प्रमुख थे।

विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार असहयोग की सबसे बड़ी सफलता थी। अंग्रेजी वस्त्र और अन्य अंग्रेजी वस्तुओं को एकत्रित कर सार्वजनिक रूप से जलाया गया। शराब विरोधी आंदोलन ने भी जोर पकड़ा जिसका प्रभाव सरकार की राजस्व वसूली पर भी पड़ा। 'तिलक स्वराज कोष' से इकट्ठा हुए पैसे से चरखा खरीदकर किसानों और महिलाओं में बांटा गया ताकि स्वदेशी को लोकप्रिय बनाया जा सके। इसी आंदोलन के दौरान (1921) गांधी ने केवल 'लंगोट' पहनना शुरू किया, और बाद में चर्चिल द्वारा **नंगा फकीर** कहलाए

17 नवम्बर, 1921 में देशभर में उस समय हड़ताल आयोजित की गयी जब प्रिंस ऑफ़ वेल्स अपने भारत दौरे पर आए। अनेक स्थानों जैसे मिदानपुर (बंगाल) चराला-पिराला और पेदानन्दीपडु तालुका (आंध्र प्रदेश) में 'कोई कर नहीं' आंदोलन भी चलाया गया। बिहार एवं यू.पी. के अनेक स्थानों के किसानों ने भी भू-राजस्व देने से इन्कार कर दिया। उन्हें यह विश्वास हो चला था कि गांधी राज की स्थापना हो चुकी है और किसी को भी कुछ कर देने की आवश्यकता नहीं है। छोटा नागपुर क्षेत्र की जनजाति 'तानभगत' ने शराब का बहिष्कार किया। बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में रायबरेली, प्रतापगढ़, फैजाबाद, सुल्तानपुर जिलों में किसान विद्रोह (जनवरी-मार्च 1921) हुआ। उधर, हरदोई, बहराइच, बाराबंकी, और सीतापुर में मदारी पासी ने एका आंदोलन का नेतृत्व किया। किसानों के अतिरिक्त, राष्ट्रवादी नेता भी असहयोग आंदोलन के दौरान यू.पी. में किसानों के बीच सक्रिय थे, जिनमें जवाहरलाल नेहरू, जी.बी.पंत, लाल बहादुर शास्त्री, पुरषोत्तम दास टंडन और गणेश शंकर विद्यार्थी प्रमुख थे।

पंजाब में असहयोग आंदोलन धर्म सुधार से जुड़ गया। स्थानीय अकालियों ने भ्रष्ट महंत (गुरुद्वारों के) और उनके सहयोगी अंग्रेज अधिकारियों के विरुद्ध आंदोलन चलाया। 20 फरवरी, 1921 को महंतो ने सौ से अधिक अकालियों की हत्या कर दी जिसे *'ननकाना शोक'* के नाम से जाना जाता है। नवम्बर, 1921 में अग्रेज अधिकारियों ने स्वर्णमन्दिर के तोसाखाने की चाबी अकालियों को देने से इंकार कर दिया। हज़ारों की संख्या में सिख सड़क पर उतार आए और अकालियों के साथ हो गए। अतत: जनवरी, 1922 में अग्रेजों को न केवल चाबी सौंपनी पड़ी, बल्कि कैदियों को भी छोड़ना पड़ा। अकालियों का संघर्ष जारी रहा, जब तक कि 1925 में सिख गुरुद्वारा और तीर्थस्थल, कानून पारित न हो गया और 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति' (एस.जी.पी.सी) की स्थापना नहीं हो गई, जिसने गुरुद्वारों पर अपना नियंत्रण स्थापित किया।

राजस्थान के क्षेत्रों में असहयोग अंदोलन असंगिठत रहा और यह मुख्यत: किसानों एवं जनजातियों के मुद्दों से सम्बन्धित रहा। मेवाड़ का बिजोलिया आंदोलन और मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में चलाया गया भील आंदोलन प्रमुख आंदोलनों में से थे। अलवर के मवातियों ने तो गुड़गांव थाने पर ही हमला बोल दिया था (दिसम्बर 1921)।

केरल के मालाबार के तटीय क्षेत्रों में खिलाफ़त गणतंत्रों की स्थापना की गई, जिसके अध्यक्ष कुनहम्माद हाजी के अतिरिक्त वलाथिंगल मम्माद, अली मुलासियर, सीर्थ कोया थंगल और इम्बिीची कोया थंगल भी इस आंदोलन में आगे-आगे रहे। मोपलाओं (स्थानीय मुस्लिम किसान) ने गुरिल्ला युद्ध प्रणाली की नीति अपनाई और ज़मीदारों को अपना निशान बनाया, भूमि के रिकार्डों को जलाया गया। चूंकि अधिकांश पीड़ित किसान मुस्लिम थे और शोषक ज़मीदार हिन्दू, इसलिए इसे साम्प्रदायिक रंग भी दिया गया, और इस प्रकार एक वर्गीय संघर्ष एक साम्प्रदायिक संघर्ष में परिवर्तित हो गया।

बंगाल में असहयोग आंदोलन का नेतृत्व सी.आर.दास के हाथ में था। उनका साथ दे रहे थे बरीन्द्रनाथ गागमल, जे.एम.सेन गुप्ता, सुभाष चन्द्र बोस, बसंती देब (सी.आर.दास की पत्नी) और मुहम्मद उस्मान। बंगाल में अनेक स्थलों पर हड़ताल, जुलूस बंद का आयोजन किया गया। कुछ पुलिसवालों ने नौकरी छोड़ी, रेलवे को अस्त-व्यस्त किया गया, स्टीमर को रोका गया और कर न देने का आंदोलन भी कुछ स्थानों पर चलाया गया।

बिहार में गांधी का ग्राम विकास कार्यक्रम अधिक सफल रहा, विशेषकर चरखा, खादी और राष्ट्रीय स्कूलों का कार्यक्रम। अनेक स्थलों पर आंदोलनकारियों ने हाटों (स्थानीय बाज़ार) को लूट लिया, जैसा कि जनवरी, 1921 में मुजफ़्फ़रपुर, भागलपुर, मुंगेर एवं पुर्णिया में देखा गया। 1920 में ज़मीदारों के विरुद्ध किसानों ने दरभंगा में आंदोलन किया।

जैसाकि अनुमान था सरकार ने इन आंदोलन को शक्ति से कुचलने का प्रयत्न किया। हज़ारों की संख्या में लोगों को गिरफ्तार किया गया। सबसे पहले सी.आर.दास, फिर मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार किया गया। गांधी ने 1 फरवरी, 1922 को वाइसराय के समक्ष चेतावनी भरी मांगें रखीं, जिनमें प्रमुख था—कैदियों को छोड़ना और समाचार पत्रों पर से लगे प्रतिबन्ध को हटाना। मांगों के न पूरा होने की परिस्थिति में उन्होंने सविनय अवज्ञा की धमकी दे डाली और उनकी योजना थी कि 'बारदोली' से कर न देने का आंदोलन शुरू किया जाएगा। खिलाफ़त नेताओं ने भी उनका समर्थन किया। लेकिन चौरी-चौरा की घटना (4 फरवरी, 1922) ने सब कुछ बदल दिया। 22 पुलिस कार्मियों को भीड़ ने जिंदा जला दिया जो गांधी के सत्याग्रह के सिद्धांत के विरुद्ध था। अतः 12 फरवरी, 1922 को (बादोली से) गांधी ने असहयोग आंदोलन समाप्त करने की घोषणा कर डाली, जिसने अनेक नेताओं को हैरत में डाल दिया।

असहयोग आंदोलन के समाप्त होते ही खिलाफ़त आंदोलन भी ढीला पड़ गया। वैसे भी अब इसे जारी रखने का कोई औचित्य नहीं रह गया था। तुर्कों की नई पीढ़ी ने मुस्तफ़ा कमाल पाशा के नेतृत्व में खलीफ़ा को हटा दिया था। कितनी अजीब बात है, जिस तुर्की खलीफ़ा की सहानुभूति में भारत के अनेक मुस्लिम नेता दिन रात जुटे थे, उसे तुर्की के मुसलमानों के एक वर्ग ने ही हटा दिया।

महत्त्व

यद्यपि असहयोग आंदोलन स्वराज प्राप्त करने के अपने लक्ष्य में विफल रहा लेकिन इसने जनता में स्वतंत्रता की भावना को जाग्रत किया और उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया कि सरकार की दमनकारी नीतियों का विरोध कर सकें। मार्च, 1921 में सरकार के खुफ़िया विभाग ने रिपोर्ट पेश किया —

''पहले कभी किसी राजनैतिक या धार्मिक नेता ने, अपने ही जीवन काल में, देश के कोने-कोने में जनता में इतनी जगह नहीं बनाई और हज़ारों-लाखों लोगों का हिंदुओं और मुसलमानों का दिल जीता ही। उनका प्रभाव निश्चय ही अद्‌भुत है और अतुलनीय भी।''

असहयोग आंदोलन के दौरान कांग्रेस ने जनता में अपने कार्यक्रम और नीति के प्रति सूत्रधार का कार्य किया। इस आंदोलन ने लोगों में अस्पृश्यता एवं शराब जैसी सामाजिक बुराइयों के प्रति जागरुकता पैदा की, और खादी वस्त्र को लोकप्रिय बनाया। गांधी भी इस आंदोलन की शक्ति और प्रभाव से प्रभावित हुए और उन्होंने कहा- '1920 में जो संघर्ष शुरू हुआ, वह अन्तिम संघर्ष है, चाहे वह संघर्ष एक महीना चले, एक वर्ष चले, कई महीना चले या कई वर्ष चले।'

➔ नेहरू रिपोर्ट

भारत सचिव लॉड बिरकनहेड ने भारतीयों को चुनौती दी कि वह स्वयं ऐसा कोई संविधान बनाएं जो सबको स्वीकृत हो। इसी चुनौती को स्वीकारते हुए राष्ट्रवादियों ने फरवरी, 1928 में एक सर्वदलीय बैठक की, फिर ऐसी ही बैठक बंबई और लखनऊ में की गई। सर्वदलीय बैठक ने मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक उप-समिति का गठन किया ताकि एक

संविधान का निर्माण किया जा सके। निम्नलिखित सदस्य अलग-अलग राजनैतिक दलों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

मोतीलाल नेहरू— *उप-समिति के अध्यक्ष*

तेज बहादुर सप्रू— *उदारवादी*

सर अली इमाम और सुहैब कुरैशी— *मुस्लिम*

एम.एस. ऐनी और एम.आर. जयकर— *हिंदू महासभा*

मंगल सिंह— *सिख लीग*

एन.एम. जोशी— *श्रमिक*

जी.पी. प्रधान— *गैर-ब्रह्मण*

सुभाष चन्द्र बोस— *कांग्रेस और*

जवाहरलाल नेहरू—संविधान निर्माण समिति के सचिव

समिति ने 10 अगस्त, 1928 को अपनी रिपोर्ट पेश की।

सुझाव

नेहरू रिपोर्ट के सुझाव इस प्रकार थे—

1. अधिकारों की घोषणा, जिनमें महिलाओं को समान अधिकार, संघ बनाने का अधिकार, व्यस्क मताधिकार का अधिकार। कुल मिलाकर 19 मौलिक अधिकार प्रदान करने का सुझाव दिया गया।
2. भारत को अधीनस्थ राज्य (Dominion Status) का दर्जा देना, जो स्वराज की परिकल्पना पर आधारित था।
3. केंद्रीय एवं प्रांतीय-विधान परिषद के लिए संयुक्त निर्वाचन प्रणाली का प्रावधान और प्रथक निर्वाचन प्रणाली का समापन, जिन स्थानों पर मुस्लिम अल्पमत में हो वहां सीटों का निर्धारण केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषदों के लिए लेकिन उन स्थानों के लिए नहीं जहां मुस्लिम बहुमत में हैं।
4. धर्म निरपेक्ष राज्य-राज्य का धर्म के कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।
5. व्यस्क मताधिकार
6. संसदीय प्रणाली की सरकार-
   (अ) भारत की संसद के दो सदन होंगे। प्रतिनिधि सभा (निम्न सदन)—जिनमें 500 सदस्य होगे, जिसके सदस्य व्यस्क अताधिकार के आधार पर चुन कर आएगें और जिसकी अवधि 5 वर्ष की होगी। दूसरा सदन 'सीनेट' (उच्च सदन) 200 सदस्यों पर आधारित होगा, जिन्हें प्रातीय विधान परिषद चुनकर भेजेगी और जिसकी अवधि 7 वर्ष की होगी। केंद्र की सरकार का प्रमुख गवर्नर-जनरल होगा, जिसकी नियुक्ति ब्रिटिश सरकार करेगी, लेकिन उसका व्यय भारत के कोष से चलेगा जो केंद्रीय कार्यकारिणी परिषद के प्राति उत्तरदायी होगा और कार्यकारिणी परिषद संसद के प्राति।
   (ब) प्रांतीय विधान परिषद का गठन वयस्क मताधिकार पर होगा, जिसकी अवधि पांच वर्ष की होगी। प्रांतीय सरकार का प्रमुख गवर्नर होगा जो प्रांतीय कार्यकारिणी परिषद के सुझाव पर कार्य करेगा।
7. विषयों का बंटवारा केंद्र और राज्यों के बीच और अवशिष्ट शक्ति केंद्र के पास होगी।
8. प्रांतों का पुनगर्ठन-भाषाओं के आधार पर।
9. एक स्वतंत्र न्यायालय जिसका उच्चतम न्यायालय की निगरानी में।

'नेहरु रिपोर्ट' भारतियों द्वारा संविधान निर्माण की ओर पहला गम्भीर प्रयत्न था। यद्यपि इसके अधिकांश सुझावों की अंग्रेजी सरकार ने 1935 के संविधान बनाते समय अनदेखी की, तथापि भारतीय संविधान सभा (1946-49) ने इसके अधिकांश सुझावों को अंगीकृत किया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन

पूर्ण स्वराज्य प्रस्तावना के कारण काग्रेस का उत्साह काफी हद तक बढ़ चुका था लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस कार्यकारी समिति ने सविनय अवज्ञा आंदोलन (1929) का आरभ करने का निर्णय ले लिया था। परंतु गांधी जी कोई भी जन आंदोलन शुरू करने से पहले ब्रिटिश सरकार को समझौते का अवसर देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने 31 जनवरी, 1930 को गवर्नर-जनरल के सामने प्रमुख 11 मांगें रखीं, जिन्हें सरकार ने अस्वीकार कर दिया यह मांगें निम्न थीं—

1. सिविल सेवाओं तथा सेना के खर्च में 50% की कटौती।
2. पूर्ण शराबबंदी।
3. सभी राजनीतिक बंदियों की रिहाई।
4. सी.आई.डी में सुधार।
5. आर्म्स राक्ट में नियंत्रण तर्कसंगत हो।
6. रुपये तथा स्टर्लिंग मुद्रा का अनुपात 1:4 रखा जाए।
7. कपड़ा संरक्षण-नीति लागू करना।
8. तटीय क्षेत्रों में जहाजरानी का क्षेत्र भारतीयों के लिये आरक्षित किया जाये।
9. भू-राजस्व में कटौती।
10. नमक कर की समाप्ति तथा नमक बनाने पर सरकार का नियंत्रण समाप्त हो।
11. डाक-आरक्षण कानून को मान्यता।

यह सभी मांगें साधारण जनता के हित में थीं। अगर सरकार चाहती तो सभी मांगों को आसानी से मान लेती क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार से राजनीतिक तथा 'डोमिनिमन स्टेट्स' की परिवर्तित करने की मांग नहीं थी। परंतु जैसा कि सर्वविदित था कि ब्रिटिश सरकार की साधारण जनता के हितों की कोई परवाह नहीं थी गांधी जी ने अपने पत्र में सरकार की भर्त्सना करते हुए लिखा—'सरकार ने भारतीय जन मानस को आत्मिक चोट पहुंचायी है तथा हमारी संस्कृति की नींव को हिलाकर रख दिया है। इसने लाखों लोगों का शोषण किया है तथा हमे राजनीतिक रूप से गुलामों से भी बद्तर जीवन दिया है।'

अब समय जन-आंदोलन के लिए था। फरवरी 1930 में कार्यकारी समिति ने गांधी जी को जन-आंदोलन प्रारंभ करने का अधिकार दे दिया तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन की प्रतीत्कात्मक शुरूआत हुई।

गांधी जी ने 12 मार्च, 1930 को दांडी-यात्रा की शुरूआत की। शुरू में केवल 78 लोगो के लेकर साबरमती आश्रम, अहमदाबाद से यह यात्रा चली। अन्य कांग्रेस नेता इस यात्रा के परिणाम के प्रति आशंकित ये परंतु गांधी जी को अपने-आप पर पूर्ण विश्वास था। करीब 240 मील का सफर तय करती हुई, गुजरात के हजारों गांव से गुजरती हुई यह जन यात्रा दांडी पहुंची तो गांधी जी के स्वागत के लिए हजारों की भीड़ वहां एकत्र थी सबने मिलकर नमक कानून तोड़ा।

गांधी जी ने लोगों को निर्देश दिये कि:

1. जहां कहीं सभंव हो सके, सविनय अवज्ञा की नमक कानून तोड़कर या भंग कर शुरूआत की जाए।
2. शराब तथा विदेशी वस्त्रों की दुकानों का बहिष्कार किया जाए।
3. सरकार को करों की अदायगी न की जाए।
4. सभी वकील अपनी वकालत छोड़ सकते हैं।
5. सामान्य जन न्यायालय में अपील न करके इनका बहिष्कार कर सकते हैं।
6. सरकारी अधिकारी त्यागपत्र दें।
7. अहिंसा और सत्य के रास्ते पर चलने की प्रेरणा लेकर स्वराज्य प्राप्ति तक हम इस पर डटे रहें।

गांधी जी की घोषणा ने जादू की तरह काम किया यह आंदोलन तटीय क्षेत्रों से बढ़कर प्रमुख भूमि की ओर बढ़ गया। तमिलनाडु के तंजौर तट पर सी. राजगोपालाचारी ने तिरुचनापल्ली से यात्रा कर वेदारण्यम स्थान से नमक कानून तोड़ा। के. कलप्पन ने कालीकठ से म्यानार (केरल) में नमक कानून भंग किया।

सत्याग्रहियों के जत्थों ने सिलहट (असम) से नोआखाली (बंगाल) तट पर जाकर नमक-कानून को भंग किया। चटगांव में सूर्यसेन के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने सरकारी बारुदखाने पर आक्रमण कर हथियार छीन लिए तथा इंडियन रिपब्लिकन आर्मी की स्थापना कर यह नारा बुलंद किया कि गांधी राज की शुरूआत हो चुकी है।

उत्तरी पश्चिमी सीमांत प्रांत (NWFP) में आंदोलन का नेतृत्व बादशाह खान कर रहे थे, जिन्हें 'सीमांत गांधी' भी कहा जाता था। पेशावर, कोहाट, बन्नू तथा डेरा इस्माइल खां इस आंदोलन के प्रमुख केंद्र बन गए। बादशाह खान के स्वयंसेवकों को खुदाई खिदमतगार या लाल कुर्ती कहा जाता था। जब बादशाह खान की गिरफ्तारी की खबर फैली तो पठानों या पख्तूनों ने अहिंसात्मक प्रदर्शन किए। पुलिस को अनेक स्थानों पर गोली चलानी पड़ी, जिसमें 30 से अधिक व्यक्ति मारे गए तथा कई जख्मी हुए। गढ़वाली रायफल्स के जवानों ने निहत्थे लोगों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया था। पठान कबायली गांधी जी या मंलग बाबा, बादशाह खान तथा इकंलाब को रिहा करने की मांग कर रहे थे। उन्हें यह मालूम ही नहीं था कि इकंलाब जिंदाबाद एक नारा है। वह तो मान चुके थे कि (मासूमियत में) इंकलाब भी शायद कोई नेता है जिसे गिरफ्तार किया गया था सरकार घटनाक्रम को लेकर परेशानी में पड़ चुकी थी। गांधी जी का अनुमान बिलकुल सही था कि सरकार अब पशोपेश में थी क्या किया जाए या क्या नहीं। अंततः मई 4, 1930 को गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। वाइसराय ने खुद इसकी आज्ञा दी थी इसके फलस्वरुप बबंई, कलकत्ता तथा दिल्ली में रोष प्रदर्शन हुए।

शोलापुर में स्थिति अति विस्फोटक हो गई। कामगारों (कपड़ों मिल के मजदूर) ने शराब की दुकानों को आग लगा दी। सरकारी भवनों को निशाना बनाया गया, रेलवे स्टेशन पर हमले हुए तथा लगभग एक समानांतर सरकार (Parallel) की स्थापना हो गई। ब्रिटिश प्रशासन इस घटना से हतप्रभ रह गया। स्थिति को काबू में करने के लिए सरकार ने 16 मई, 1930 के बाद शोलपुर में सैन्य कानून लागू कर दिया।

सत्याग्राह की चरम परिणिति महाराष्ट्र के धरसना नमक कारखाने में हुई। 21 मई, 1930 को सत्याग्रहियों का एक जत्था सरोजनी नायडू के नेतृत्व में पुलिस द्वारा घेराबंदी किए जाने के बाद भी धरसाना नमक कारखाने की ओर बढ़ा। सत्याग्रही डंडों की चोट सहते रहे परंतु उनमें से किसी ने भी विरोध नहीं किया अनेकों घायल हुए (करीब 320) तथा 2 सत्याग्रहियों की मृत्यु भी हुई। इस घटना का वर्णन करते हुए अमरीकी पत्रकार वैब मिलर ने लिखा 'अपने अठारह वर्षो के पत्रकारिता जीवन में

पूर्ण स्वराज

सबसे पहले पूर्ण स्वराज की मांग उठाने वाले नेता थे मौलाना हसरत मोहानी परंतु कांग्रेस पार्टी को यह मांग जल्दीबाजी वाली लगी। सन 1927 में जवाहरलाल नेहरु ने यह मांग उठायी परंतु गांधी जी ने इसे टाल दिया। सन् 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में गांधी जी तथा पंडित नेहरू ने नेहरू रिपोर्ट में व्यक्त डोमिनियन स्टेसस को ही अपना उद्देश्य बनाया और उम्मीद रखी कि ब्रिटिश सरकार 1929 तक इसे मान लेगी। सुभाषचन्द्र बोस को नेहरु जी की इस उपेक्षा से आघात पहुंचा।

अनेकों प्रादेशिक कांग्रेस समितियों के विरोध के बावजूद गांधी जी ने नेहरू को कांग्रेस का सभापति (1929, लाहौर कांग्रेस) चुना। अपने अध्यक्षीय भाषण में पंडित नेहरू ने कहा मैं यह प्रत्यक्ष रूप से मानता हूं कि मैं समाजवादी और रिपिब्लकन हूं। मैं राजतंत्र तथा राजाओं तथा युवराजों के पक्ष में नहीं हूं और न ही आधुनिक उद्योगपति राजाओं के पक्ष में।

सुभाष बोस ने अति प्रतिक्रियावादी रुख अपनाया। वह चाहते थे कि तुरंत आम हड़ताल, करबंदी तथा उत्तरदायी सरकार की घोषणा की जाये तथा जहां सभंव हो सके आम हड़ताल शुरू करवायी जाए। परंतु उनका यह प्रस्ताव खारिज कर दिया गया। अंततः लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज के प्रस्ताव को अपना उद्देश्य बनाया तथा 31 दिसम्बर, 1929 को वंदे मातरम् और इंकलाब जिन्दाबाद के नारों के बीच तिरंगा लहराया गया (रावी नदी के तट पर)।

मैने अनेकों दंगे, विद्रोह गृहयुद्ध तथा फसाद देखे हैं परंतु धरसाना जैसा दिल दहलाने वाला दृश्य कभी कहीं नहीं देखा।'

इस प्रकार का निर्भीक सत्याग्रह का प्रदर्शन जो धरसाना नमक कारखाने में हुआ उसका दूसरा उदाहरण मानव इतिहास में बहुत कम ही मिलता है।

महिलाओं तथा विद्यार्थियों ने विशेषकर तथा विदेशी वस्त्र बहिष्कार में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। व्यापारियों तथा व्यापारिक संस्थानों ने बहिष्कार में अग्रणी भूमिका निभाई। शराब का बहिष्कार सफल रहा क्योंकि सरकार की कर संग्रहण क्षमता में काफी कमी आ गयी थी।

बिहार में किसानों ने चौकीदारी कर देने को मना कर दिया। यह कर उन चौकीदारों को वेतन के रूप में मिलता था, जो गांवों में सुरक्षा की दृष्टि से पुलिस द्वारा नियुक्त किए जाते थे। यह लोग एक प्रकार से गुप्तचरों की तरह कार्य करते थे। मुंगेर, सारन तथा भागलपुर जिलो में जिन किसानों ने यह कर नहीं चुकाया तो सरकार ने बदले की भावना से प्रेरित होकर उन्हें तंग किया तथा कईयों की जमीन-जायदात से बेदखली की गई। कांग्रेस के प्रमुख नेताओं डा. राजेनद्र प्रसाद तथा अब्दुल बारी ने बिहपुरा (भागलपुर) में आंदोलन चलाया। सूरत जिले के बारदोली में किसानों ने कर ना अदायगी आंदोलन चलाया। महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा मध्य क्षेत्र के वनवासियों ने वन-कानूनों का उल्लघन कर इस आंदोलन में अपना योगदान। सरकार द्वारा बनाए गए वनकानूनों ने इन वनवासियों का जीवन अति कष्टमय बना दिया था।

आसाम के विद्यार्थियों ने कनिघंम सर्कुलर का विरोध किया जिसके उनसे अच्छे व्यवहार की गांरटी देने की जोर-जबर्दस्ती की जाती थी। सूरत में विद्यार्थियों ने जीवित झंडे को बनाने के लिए कपड़ों को (खादी) तीन रंगों में जोड़कर पहना, जिससे कि उसे आसानी से जब्त न किया जा सके और पुलिस उसे छीन भी नहीं सकती थी।

उ.प्र. में किसानों ने ज़मींदार के विरुद्ध 'कर ना अदायगी' आंदोलन चलाया, जिसे बाद में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी समर्थन दिया तथा उ.प्र. की कांग्रेस कार्यसमिति ने इसका अनुमोदन भी किया। यह आंदोलन आगरा तथा रायबरेली ज़िलों में अति सफल रहा।

मैकडोनाल्ड अवार्ड

यह 'अवार्ड' 'कम्यूनल अवार्ड', के नाम से भी जाना जाता है। इसकी घोषणा ब्रिटिश प्रधानमंत्री रामसे मेकडोनाल्ड ने 1932 में इस उद्देश्य से की थी कि भारत में सांप्रदायिक निवचिन का अधिक विस्तार हो सके। इस घोषणा के अनुसार यह भारत में या दलित हिंदू भी मुसलमानों तथा सिख, ईसाइयों की तरह अल्पसख्यंक हैं तथा उन्हें भी पृथक निवचिन का अधिकार प्रदान किया जाएगा-(डा. अम्बडेकर इस मांग पर ब्रिटिश सरकार पर दबाव बनाए हुए थे)। यह ब्रिटिश कूटनीति बांटो और शासन करो की नीति का अहम् हिस्सा थीं। जिसके द्वारा वह सर्वण हिंदुओं तथा दलित जातियों में भेद करना चाहती थी।

पूना समझौता

कांग्रेस पार्टी 'सांप्रदायिक अवार्ड' की विरोधी भी। परंतु वह विरोध को सार्वजनिक नहीं करना चाहती थी। परंतु गांधी जी अधिक दृढ़ निश्चयी थे। उन्होंने इसका विरोध करने का निश्चय किया। जिस समय इसकी घोषणा हुई गांधी जी पूना के यरवदा जेल में सजा काट रहे थे। यह घोषणा उनके लिए पीड़ादायक थी क्योंकि उनका यह मानना था कि दलित जातियों को पृथक निर्वाचन का अधिकार देकर अस्पृश्यता को कभी भी निर्मूल समाप्त नहीं किया जा सकता तथा समाज में यह ओर कठोर हो जाएगी। उनका मानता था कि मुसलमान और सिखों की अलग पहचान तो फिर भी पृथक निर्वाचन के लिए ठीक है। परंतु दलित जातियों की अलग पहचान उनकी सबसे बड़ी दुश्मन साबित होगी।

गांधी जी ने सांप्रदायिक आवार्ड के विरुद्ध उपवास रखा। अतंत: अम्बेडकर तथा गांधी जी के मध्य समझौता हुआ (सितम्बर, 1932) जिसे पूना-समझौता भी कहा जाता है।

इस समझौते में दलित हिंदू जातियों के लिए निर्धारित पृथक निर्वाचन मंडलों को समाप्त किया गया तथा केंद्रीय तथा प्रांतीय विधायिकाओं में उनके लिए कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये गए, जिससे प्रांतीय असेम्बलियों में उनके स्थान 71 से बढकर 147 हो गए तथा केंद्रीय असेम्बली में 18 प्रतिशत स्थान को उनके लिए सुरक्षित रखे गए-जिसका अर्थ या कि अन्य कोई भी दलित, सीट से चुनाव लड़ सकता है परंतु मतदाता सभी जातियों के होंगे बजाए इसके कि जैसा पृथक निर्वाचन मंडलों में यह व्यवस्था कि प्रत्याशी तथा मतदाता दोनों दलित वर्ग के होंगे।

गांधी-इरविन समझौता

समझौता गांधी जी को सोची-समझी रणनीति थी, क्योंकि कोई भी जनांदोलन बहुत लंबे समय तक नहीं चल सकता था। इसलिए गांधी इरविन समझौता (मार्च 15, 1930) इसी रणनीति का हिस्सा था। व्यापारी वर्ग, जो बहिष्कार आंदोलन से त्रस्त था, ने भी समझौता को लागू करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

इस समझौते की शर्तें निम्न थीं :

1. उन सभी राजीतिक बंदियों की रिहाई जिन पर हिंसा का मुकदमा न चल रहा हो।
2. सभी आर्थिक दंड जिन्हें लगाया न गया हो पर आम माफी।
3. सभी जब्त भूमियां जिन्हें बेचा न गया हो वापस दी जाएंगी।
4. उन सभी सरकारी अधिकारियों के साथ दयापूर्ण व्यवहार, जो आंदोलन के चलते त्यागपत्र दे चुके थे।
5. सभी तटीय क्षेत्र के गांव नमक स्वउपयोग के लिए बनाने को स्वतंत्र होंगे।
6. शांतिपूर्ण तथा अनाक्रमक विरोध प्रदर्शन अधिकार मान्य होंगे।
7. कांग्रेस ने भी सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस लेने का निर्णय लिये।

परंतु यह समझौता कइयों के लिए निराशाजनक था। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा—'इस समझौते से आंदोलन का अंत धमाके से न होकर निराशा से हुआ',

कांग्रेस की एक प्रमुख मांग कि आंदोलन के दौरान हुए पुलिस ज्यादती सार्वजनिक छानबीन हो को सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया बल्कि कांग्रेस ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने का निश्चय किया।

गोलमेज सम्मेलन

साइमन कमीशन तथा लार्ड इरविन के सुझाव पर ब्रिटिश सरकार ने भारत की संवैधानिक समस्याओं को सुलझाने के लिए गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया। इस कड़ी में पहला गोलमेज सम्मेलन लंदन में 12 नवम्बर, 1930 से शुरू होकर, 19 जनवरी, 1931 तक चला। भारतीय समाज के सभी प्रतिनिधियों-हिंदु , मुस्लिम, सिख, ईसाई, दलित ज़मींदारों, पूंजीपतियों भारत में रहने वाले यूरोपीय, राजे-महाराजे तथा उदारवादियों ने इसमें भाग लिया।

ब्रिटिश सरकार ने उन सभी को सम्मान तथा समानता के आधार पर रखा इसलिए यह सम्मेलन गोलमेज कहलाया। हर प्रतिनिधि को ब्रिटिश सरकार ने इस प्रकार चुना था कि जिससे कांग्रेस के महत्व को कम किया जा सके तथा यह धारणा बनाने की भी कोशिश की गई कि भारत की समस्याओं का समाधान मात्र ब्रिटिश सरकार ही कर सकती है।

प्रथम सम्मेलन

यह सम्मेलन सम्राट जार्ज पंचम द्वारा शुरू किया गया। प्रधानमंत्री रामसे मेकडीनाल्ड इसके अध्यक्ष बने। सम्राट ने अपने भाषण में भारत के विकास की ओर ध्यानाकर्षण किया

तथा भारत में अल्पसंख्यकों सहित अन्य वर्गों की सुरक्षा पर बल दिया। कई समितियों का गठन हुआ जिसमें विभिन्न मुद्दों पर बहस होनी थी। अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन मंडलों की मांग रखी। परंतु मुसलमानों में मत विभाजन था। पंजाब और बंगाल के मुसलमान अपनी जनसंख्या के अनुसार विधानसभाओं में सीटें चाहते थे क्योंकि जनसंख्या की दृष्टि से इन दो प्रदेशों में मुसलमान ज्यादा थे। परंतु उत्तरप्रदेश के मुसलमान तथा अन्य प्रदेशों के मुसलमान अल्पसख्यक होने के कारण जनसंख्या के अनुपात से बढ़ी हुई सीटें चाहते थे। इस पर कोई समझौता न हो सका। प्रधानमंत्री ने अपने अंतिम भाषण में यह मुद्दे सामने रखे :

1. भारतीय प्रशासन विधानमंडलों के अधीन कार्य करेगा।
2. अखिल भारतीय संघ की स्थापना का निर्णय।
3. विधायिका और कार्यपालिका एक-दूसरे के प्रति जवाबदेह होंगे परंतु रक्षा, विदेशी तथा आपातकालीन शक्तियों के मामले में केंद्रीय सरकार का अधिकार सर्वोपरि होगा।
4. प्रांतों में सरकारों की स्थापना होगी तथा केंद्र तथा प्रांतों में शक्तियों का बटवारा होगा।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (7 स्तिम्बर, 1931-दिसम्बर, 1931)

कांग्रेस ने प्रथम गोलमेज सम्मेलन का बहिष्कार किया था क्योंकि यह सम्मेलन उस समय हुआ था जब सविनय अवज्ञा आंदोलन जोरो पर था परंतु गांधी-इरविन समझौते के पश्चात् कांग्रेस ने गोलमेज सम्मेलन में भाग लेनी की स्वीकृति दी थी तथा गांधी जी को कांग्रेस प्रतिनिधि बनाकर लंदन भेजा गया। सरोजनी नायडू (भारत कोकिला) ने भारतीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व किया। परंतु सम्मेलन समस्याग्रस्त ही रहा।

अल्पसंख्यकों ने मजबूती से अपने पक्ष को रखा तथा समाधान के लिए गांधी जी के सामने सुझाव पेश किया, जिसे गांधी जी ने अस्वीकार कर दिया। मेकडोनोल्ड ने इन वर्गों का समर्थन किया और कहा यह वर्ग भारत के 11.5 करोड़ लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। गांधी जी ने इसके विरोध में तर्क दिया कि कांग्रेस 85 प्रतिशत भारतीय जनता की प्रतिनिधि है। इन तर्कों तथा वितर्कों के कारण सम्मेलन का कोई नतीजा न निकला तथा यह असफल हो गया।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन (17 नवम्बर, 1932-24 दिसम्बर, 1932)

तीसरा सम्मेलन अपनी प्रासंगिकता खो चुका था क्योंकि कांग्रेस ने सम्मेलन का बहिष्कार पहले दो सम्मेलनों की असफलता के कारण किया था अंत में श्वेत पत्र के द्वारा यह घोषणा की गई कि भारत में 'डाईआर्की' या द्वेध शासन केंद्र तथा प्रांतों में सरकार का गठन, नव-सविधान इत्यादि का प्रशासनिक प्रारूप तैयार किया गया जो आगे चलकर गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट-1935 का आधार बना।

1940 का सत्याग्रह तथा भारत छोड़ो आंदोलन

द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत होते ही भारत में नये राजनीतिक समीकरण बने, जिससे इसकी राजनीति में बदलाव आए। भारत सरकार ने युद्ध में भारत के जर्मनी के विरुद्ध शामिल होने की घोषणा कर दी जिससे भ्रम की स्थिति बनी। वाइसराय तथा गवर्नर जनरल लिनलथगो ने युद्ध के बाद मंत्रणा परिषद गठित करने की बात की तथा यह घोषणा कि 1935 के एक्ट या कानून को सुधारा जायेगा जिसमें सभी

जातियों, प्रतिनिधियों तथा राजाओं के प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श किया जायेगा (भारत प्रशासन को लेकर)। कांग्रेस ने वाइसराय की घोषणा से असहमति व्यक्त की तथा युद्ध में सरकार को सहायता देने से इंकार किया तथा विरोधस्वरूप प्रांतीय असेम्बलियों में कांग्रेस शासित प्रदेशों से मत्रिषरिषदों ने त्यागपत्र दे दिया।

सरकार विरोधी रुख के बावजूद, कांग्रेस नेताओं ने कोई जनाआंदोलन चलाने की घोषणा फिलहाल नहीं की क्योंकि उनका मानना थी कि ब्रिटेन तथा मित्र राष्ट्रों का संगठन न्यायसंगत था तथा अभी उन्हें निराश करना या असहयोग करना ठीक नहीं था और संस्थागत तौर पर क्रांग्रेस अभी कमजोर संगठन था क्योंकि हिंदू मुस्लमान सांप्रदायिक माहौल अभी जन एकता में आड़े आ सकता था और सरकार के विरुद्ध यह माहौल आंदोलन की सफलता को खतरे में डाल सकता था। वामपंथी अपनी योजना को लेकर आश्वस्त थे। फारवर्ड ब्लाक, कांग्रेस समाजवादी पार्टी तथा साम्यवादी दलों ने इसे साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध बताया तथा सुझाव पेश किया कि आम जन अब आंदोलन के लिए तैयार है और युद्ध में उलझे होने के कारण कोई भी जनांदोलन सरकार को परेशानी में डाल सकता है तथा यही मौका या अवसर है जिसे अब गंवाना उचित नहीं होगा। वे कांग्रेस-नेताओं की देखो और इंतजार करो नीति का विरोध कर रहे थे तथा उन्होंने नेताओं की इस बात पर भी भर्त्सना की कि वह जनसंघर्ष से भयभीत है तथा साम्राज्यवदियों के साथ समझौता करना चाहती है।

कांग्रेस पार्टी ने रामगढ़ अधिवेशन में (मार्च, 1940) गांधी जी को सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ करने का अधिकार दिया परंतु गांधी जी ने सीमित स्तर पर व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाने का प्रस्ताव पेश किया जिसमें हर मोहल्ले से चुने हुए व्यक्ति सत्याग्रह प्रारभ करें और यह सत्याग्रही सरकार की युद्ध नीति की विरोध करेंगे तथा अंहिसक सत्याग्रह करते हुए भाषण की स्वतंत्रता की मांग करेंगे। उन्होंने यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार को युद्ध में व्यक्ति तथा सामग्री ये सहायता प्रदान करना न्यायपूर्ण नहीं है। यह भी कहा गया कि जो सत्याग्रही युद्ध-नीति का विरोध करने का निर्णय लेगा वह ज़िलाधीश या मजिस्ट्रेट को सूचित करेगा तथा फिर वह हिंसक संघर्ष की शुरुआत तथा जगह और समय की जानकारी भी वह प्रशासन को देगा। प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रह विलोना भावे के द्वारा 17 अक्टूबर, 1940 को शुरू किया गया। इसके बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू (अक्टूबर 31, 1940) तथा अनेकों सत्याग्रहियों ने उसमें शामिल होकर इसकी शुरुआत की। बहुत सारी गिरफ्तारियां हुईं। कई दिल्ली की तरफ कूच करने लगे तथा उन्होंने दिल्ली-चलो का नारा दिया। 15 मई, 1940 तक व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने के कारण 2500 से अधिक सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया जा चुका था। इस कारण व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रभाव सीमित रहा इसे आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई, 1941 की बंसत तक आते-आते लगभग सभी गिरफ्तार सत्याग्रही जेलों से रिहा हो गए थे।

क्रिप्स प्रस्ताव

द्वितीय विश्व युद्ध में पर्ल हार्बर की घटना (दिसम्बर, 1941) ने मोर्चे पर हालात को और खराब बना दिया। इसके कारण ब्रिटिश सरकार पर अमरीकी और चीनी दबाव बना उन्होंने सुझाव दिया कि अब ब्रिटेन को युद्ध में भारतीयों का सहयोग लेने के लिए बातचीत तथा समझौते का रास्ता अपनाना चाहिए। इसी कारण ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स मिशन को भारत भेजा, जो ब्रिटिश कैबिनेट मंत्री-स्टार्फड क्रिप्स की अध्यक्षता में भारत पहुंचा। मिशन ने भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए कांग्रेस से बातचीत शुरू की तथा कांग्रेस ने मौलाना आजाद व जवाहरलाल नेहरू को मिशन से बातचीत करने के लिए अधिकृत किया। क्रिप्स ने निम्नलिखित प्रस्ताव भारतीयों के सामने रखे:

1. युद्ध के पश्चात भारत को डोमिनियन स्टेट्स का दर्जा प्रदान किया जायेगा।
2. संविधान सभा का गठन होगा जिसके सदस्य प्रांतीय असेम्बलियों से चुने जाएंगे तथा राजतंत्रों के सदस्य राजाओं द्वारा नामित होंगे।

3. अगर कोई प्रांत नये संविधान को नहीं मानेगा तो उसके साथ ब्रिटेन अलग से समझौता कर भविष्य तय करेगा।
4. भारत की रक्षा की जिम्मेदारी ब्रिटेन पर होगी।

कांग्रेस और मिशन के बीच वार्ता विफल रही क्योंकि कांग्रेस ने इन प्रस्तावों को खारिज किया तथा डोमिनियन स्टेट्स राजतंत्रों को सदस्य नामित करने का आधिकार और आंशिक रूप से भारत-विभाजन के प्रस्ताव पर कांग्रेस को आपति थी।

भारत छोड़ो आंदोलन

अगस्त, 1942 में जो प्रसिद्ध जन आंदोलन बंबई से शुरू होकर पूरे भारत में फैल गया था उसके पीछे प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :

1. खाद्य वस्तुओं के दाम 60 प्रतिशत तक बढ़ चुके थे, पूर्वी उ.प्र. में अप्रैल, 1942 से अगस्त, 1942 तक यह स्थिति काबू के बाहर थी इसके साथ-साथ चावल तथा नमक की भी भारी कमी थी।
2. युद्ध की विभीषिका और उसकी अनावश्यकता और घायल सैनिकों की पीडा से ओर गहरी हो चुकी थी और लोग सरकार के विरुद्ध हो चुके थे।
3. भारतीय सैनिकों को विदेशी फौजियों जैसी ब्रिटिश, अमरीकी तथा कनाडाइयों से अपमान सहना पड़ता था तथा वह कई बार उनकी स्त्रियों से अभद्र व्यवहार भी कर बैठते थे।
4. आसाम तथा बंगाल के तटीय क्षेत्रों से जापानी आक्रमण के भय से ब्रिटिश सरकार ने उनके नावें भी छीन लीं जो उनकी जीवन रेखा थी। गांधी जी 3 मई, 1942 हरिजन में टिप्पणी की 'आम लोगों की वोट छीनने का अर्थ था उन्हें पूर्ण रूप से अपना बना देना'
5. पूर्वी भारत में अन्न की कमी के कारण बाजारी पर मुनाफाखोरी तथा कालाबाजारी करने वालों का एकाधिकार हो गया जिसकी कारण गरीबों को बहुत परेशानी हुई।
6. 1942 के मध्य तक युद्ध से कुछ व्यापारियों ओर पूंजीपतियों को लाभ हुआ परंतु मारवाड़ी और बनिया वर्ग को मलामा तथा बर्मा में काफी नुकसान सहना पड़ा। कांग्रेस के पूंजीपति वर्ग ने इस तथ्य को काफी ध्यानपूर्वक ढंग से महसूस किया।
7. जापानियों की दक्षिण-पूर्व क्षेत्रों में विजय यात्रा थे ने इस भ्रम को तोड़ डाला कि युद्ध में यूरोपीयों को हराना आसान नहीं और अंग्रेजी की तो सरकार इन हारों से काफी दुर्गति हुई।

इस प्रकार 1942 के मध्य तक भारत में आराजकता की स्थिति थी। गांधी जी जो हमेशा संयम में रहते थे परंतु धीरे-धीरे उनका धर्म भी जवाब दे रहा था तथा उनके रुख में कठोरपन आ गया था उन्होंने एक अवसर पर कहा—'इस प्रकार की अनुशासित अराज से बेहतर तो मैं पूरी अराजकता का खतरा मोल लेने की भी तैयार हूं।'

कांग्रेस नेताओं ने जुलाई-मध्य में वर्धा में बैठक की तथा अगस्त 8, 1942 को भारत छोड़ो प्रस्ताव पास किया गया, जिसका अनुमोदन अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के बंबई अधिवेशन में किया गया। नेताओं ने जोशपूर्ण आह्वान में कहा एक जनांदोलन शुरू किया जाएगा तथा जहां तक हो सके यह पूर्ण-अहिंसक हो तथा इसका दायरा विस्तृत हो।

गांधी जी ने अपने भाषण मे 'करो या मरो' के नारे को अपना मूलमंत्र बनाया तथा कहा कि आज ये सभी भारतीय अपने आप को आजाद नागरिक समझें, अब जेल भरना ही काफी नहीं होगा, परंतु नेहरू, भूलाभाई देसाई तथा राजगोपालचारी जैसे नेताओं ने भारत छोड़ो प्रस्ताव का विरोध किया परंतु नेहरू जो हमेशा बाद में गांधी जी का साथ देते थे भारत छोड़ो प्रस्ताव का समर्थन किये थे—

इस आंदोलन के प्रमुख तत्व निम्नानुसार थे—

1. ब्रिटिश शासन का अंत हो तथा ब्रिटिश सरकार को यह समझा दिया गया था उन्हें हर हाल में भारत को छोड़ना पड़ेगा।

2. भारत फासीवाद तथा साम्राज्यवाद से अपनी रक्षा स्वंय ही कर सकने में सक्षम है।
3. ब्रिटेन के जाने के पश्चात् भारत अपनी अस्थाई सरकार स्वंय ही बनाएगा।

इस आधिकारिक घोषणा के अलवा गांधी जी ने गवालिया टैंक मैदान में लोगो को अपनी तरफ से यह कहा

1. किसानों से—अगर ज़मीदार सरकार का साथ दे तो उन्हें लगान मत दो।
2. विद्यार्थियों से—बलिदान के लिए तैयार रहें, आत्मविश्वासी बनें तथा पढ़ाई छोड़ें।
3. सैनिकों से—अपने ही लोगो पर गोली न चलाए।
4. सरकारी कर्मचारियो से—त्यागपत्र न देकर सरकार में बने रहकर इससे असहयोग करे।
5. राजाओं से—आम जनों का समर्थन करे तथा लोगो की रक्षा की स्वीकारे
6. राजतंत्रों के लोगों से—अगर आपकी शासक सरकार विरोधी है तो ही उनका समर्थन करे तथा अपने राज्य को भारत का संघ-अंग माने।

सरकार ने भी तेजी से निर्णय लिया तथा त्वरित कारवाई करते हुए 9 अगस्त 1942 को गांधी जी समेत पूरे नेताओं को गिरफ्तार कर बंदी बना लिया। अचानक हुई कार्रवाई से लोगों में असंतोष भड़क उठा तथा उन्होंने प्रतिक्रिया व्यक्त की।

बंबई के गवालिया टैंक मैदान में लाखों लोगों ने प्रदर्शन किया तथा पुलिस के साथ झड़प हुई। अनेक शहरों में बहुत बड़े पैमाने पर गड़बड़ी फैली तथा हड़तालें हुईं। ये प्रमुख शहर थे—बंबई, कलकत्ता, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, नागपुर, अहमदाबाद, पटना तथा जमशेदपुर। पटना सचिवालय पर झंडा फहराने के प्रयास में 7 छात्र पुलिस की गोलीबारी में उस वक्त मारे गए जब वह ब्रिटिश झंड़ा उतार कर तिंरगा फहरा रहे थे। जमशेदपुर का टाटा स्टील कारखाना 20 अगस्त, के बाद 13 दिनों तक बंद रहा, मजदूरों ने घोषणा की वह तब तक काम पर वापस नहीं जाएंगे जब तक कि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना नहीं हो जाती। अहमदाबाद की कपड़ा मिलें 3 1/2 तीन महीने तक बंद रही तथा इसे भारत का स्टानिनग्राद का नामकरण किया गया।

अगस्त के मध्य तक आंदोलन उग्र तथा हिंसक हो गया। पूर्वी यू.पी., बिहार प्रभावित रहे, छात्रों तथा किसानों ने अनेक स्थानों पर तोड़-फोड़ की रेलवे लाइन, पुल तथा संचार मध्यमों को ध्वस्त किया गया। रेलवे तथा तार-संचार तारों को काट दिया गया। पुलिस स्टेशन रेलवे स्टेशन, न्यायालयों इत्यादि जो सरकार के केंद्र थे तथा सत्ता के केंद्र थे सभी लोगों के आक्रोश का निशाना बने। कई स्थानों पर सरकारी भवनों पर तिंरगा फहराया गया। छात्रों ने स्कूलों तथा कॉलेजो में हड़ताल की, अनेक पत्रिकाओं का संपादन किया गया तथा उन्हें भूमिगत तरीकों से लोगों में बांटा गया। लड़कियों ने इसमें विशेष भूमिका निभाई।

सितम्बर के अंत तक, आंदोलन राष्ट्रवादी क्रांतिकारियों के हाथ में आ गया। उन्होंने पुलिस स्टेशन तथा सेना के केंद्रों पर अनेक हमले किए और एक प्रकार से इसे गुरिल्ला या छापामार युद्ध की तरह से चलाया। समाजवादी नेता जय प्रकाश नारायण ने आजाद दस्ता नामक संगठन बनाया जिसने नेपाल के जगंलों में अनेकों युवकों को छापामार युद्ध संचालन में प्रशिक्षित किया जो बाद में जेलों पर हमले भी करने लगे। क्रांतिकारी संगठन अनेक स्थानों पर समानांतर सरकार कायम करने में भी सफल रहे यह प्रमुख स्थान थे—मिदानपुर (बंगाल) में तामलुक, महाराष्ट्र में सत्तारा, तालचर (उड़ीसा) बिहार में चंपारण तथा उ.प्र. में बलिया।

सरकार ने हमेशा की तरह क्रांतिकारियों को हजारों की सख्ंया में गिरफ्तार किया तथा दवाब की रणनीति बनायी। 1943 के अतं तक लगभग 92000 से अधिक लोग गिरफ्तार कर लिए गए थे जिसमें सबसे ज्याद बंबई प्रेसीडंसी (24,416) यू.पी. (18,794) तथा बिहार (16,202) से थे। पुलिस द्वारा महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार भी किया गया। इतना ही नहीं आंदोलन को कुचलने के लिए उन्नत

किस्मों के हथियारों जैसे—मशीनगन तथा हवाई-जहाजों का प्रयोग किया गया। यह हथियार बिहार में पटना तथा भागलपुर, बंगाल में नादिया तथा तामलुक तथा उड़ीसा में तालचर में प्रयोग किए गए।

इस प्रकार 1942 के जनांदोलन ने भारतीय समाज के हर वर्ग को प्रभावित किया। हिंदु महासभा तथा कम्यूनिस्ट पार्टी को छोड़कर भारत की हर राजनीतिक पार्टी इसमें शामिल हुई। मुस्लिम लीग के सदस्यों ने बंगाल में अग्रणी भूमिका निभाई। अन्य संस्थाओं के सीमित रूप से भाग लेने के कारण के बावजूद भी सन् 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन कांग्रेस के सभी पहले आंदोलन से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अत्यधिक हिंसक रहा और लोगों की ब्रिटिश सरकार विरोधी भावना सबसे अधिक इसी आंदोलन में रही। इसके कारण ही ब्रिटिश वाइसराय तथा गर्वनर जनरल (तत्कालीन) लिनलिथगो को कहना पड़ा था—मैं 1857 के बाद पहली बार भारत में इतना बड़ा जनविद्रोह ब्रिटिश प्रशासन के विरुद्ध महसूस कर सकता हूं।

रियासतों में जनांदोलन

रियासतों में रहने वाले लोगों ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लिया। यह रजवाड़े ब्रिटिश प्रशासन के अधीन राजाओं तथा नवाबों द्वारा शासित थे। यहां के निवासियों के पास ब्रिटिश भारत की अपेक्षा राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक अधिकार काफी कम थे। करों का बोझ भी अधिक था। रजवाड़े प्रिवी पर्स पर पूरा अधिकार रख विलासितापूर्ण जीवन बिताते थे परंतु कुछ राज्यों जैसे बड़ौदा तथा मैसूर में सुधार आंदोलन इत्यादि चले और जन कल्याण के कार्य भी हुए और उन्होंने राज्यों में छोटे उद्योग-धंधों को भी विकसित किया।

असहयोग तथा खिलाफत आंदोलन के दौरान इन रजवाड़ों में राष्ट्रवादी चेतना का विकास हुआ तथा मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, जामनगर, इंदौर, नवानगर तथा कठियावाड़ में स्टेसस् पीपलस् कांग्रेस का गठन भी हुआ। सन् 1927 में ऑल इंडिया स्टेसस् पीप्लस् कांग्रेस का भी गठन किया गया, जिसमें बलवंत राय मेहता, मनीलाल कोठारी तथा जी आर अभ्यंकर जैसे नेताओं ने काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया। कांग्रेस के नागपुर अधिवेशान में 700 से अधिक व्यक्तियों ने इन रजवाड़ों से आकर भाग लिया। इसी अधिवेशन में कांग्रेस पार्टी ने प्रस्ताव पास कर इन रजवाड़ों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना तथा वहां के लोगो को कांग्रेस में शामिल हाने का अधिकार भी दिया परंतु कांग्रेस के नाम से आंदोलन चलाने की इजाजत नहीं दी।

इसी मांग को 1927 में भी दोहराया गया परंतु 1929 में जवाहरलाल नेहरू ने लाहौर कांग्रेस में यह विचार प्रस्तुत किया कि रजवाड़ों के लोगों को समान राजनीतिक अधिकार मिले क्योंकि वह स्वतंत्र भारत से किसी भी प्रकार भिन्न ही है और इन लोगो का भाग्य स्वंय ही तय होना चाहिए न कि राजाओं और नवाबों द्वारा। परंतु पड़ित नेहरू को छोड़कर कांग्रेस पार्टी ने दो महत्वपूर्ण तथ्यों पर कभी विचार नहीं किया जैसे

1. रजवाड़ों में जनता के प्रति उत्तरदायी सरकार।
2. भारत के साथ रजवाड़ों का विलय।

गांधीजी ने भी रजवाड़ों के सामने प्रमुख प्रस्ताव रखे:

1. लोगों के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता।
2. स्वतंत्र न्यायिक प्रणाली।
3. प्रिवी पर्स में कटौती की मांग।

1935 के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट ने भारतीय परिसंघ का प्रस्ताव दिया, जिसमें ब्रिटिश इंडिया और रजवाड़ों के मध्य एकीकरण का भी सीमित अंग था परंतु अखिल भारतीय परिसंघ वाला अनुच्छेद कभी लागू ही नहीं हो सका जिससे इस एकीकरण की उम्मीद भी पूरी न हो सकी। सन् 1937 के

चुनावी में जब कांग्रेस ने आठ राज्यों में अपनी सरकारें कायम की तो राजनीतिक भावना प्रबल हुई क्योंकि ये रियासतें सभी कांग्रेस शासित राज्यों उ.प्र., मध्य प्रांत, मद्रास, बिहार, उड़ीसा, आसाम तथा उत्तरी सीमा प्रांत की सीमा से सटे हुए थे। इसके कारण रियासतों में प्रजा मंडलों की स्थापना हुई जैसे—जयपुर, कश्मीर, पटियाला, हैदराबाद, मैसूर, त्रावनकोर इत्यादि। इनके कुछ प्रमुख नेता थे—जमनालाल बजाज, शेख अब्दुल्ला, जय नारायण व्यास तथा यू.एन देवधर इत्यादि। जब कांग्रेस को इन रियासतों में व्यक्त जन उत्साह का ज्ञान हुआ तो उन्होनें अपनी रियासतों में अहस्तेक्षप की नीति का त्याग किया। 1939 के त्रिपुरी कांग्रेस अधिवेशन जिसकी अध्यक्षता सुभाषचन्द्र बोस ने थी, में यह सहमति हुई कि, स्टेट्स पीपलस काफ्रेस को कांग्रेस का समर्थन दिया जाए तथा 1939 के लुधियाना अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू को इसका अध्यक्ष या सभापति चुना गया, जिससे रियासतों तथा ब्रिटिश इंडिया में जनआंदोलन जुड़-सा गया।

1939 में राजकोट में यू.एन घेवर ने वहां के बदनाम दीवान वीरवाला के विरुद्ध जन आंदोलन शुरू किया। इस दीवान ने बहुत सारे कर राज्य पर लगाए थे जिसका विरोध वहां के व्यापारी कर रहे थे। इसी के साथ-साथ दीवान ने चुनी हुई कौंसिल में परामर्श भी लेना बन्द कर दिया था और राज्य की सारी आय विलासितापूर्ण कार्यों में खर्च कर दी जाती थी, इस आंदोलन में कस्तूरबा गांधी तथा मनोवह्न पटेल ने फरवरी, 1939 में अपनी गिरफ्तारी दी। गांधी जी भी मार्च, 1939 में राजकोट पहुंचे और उन्होंने आंदोलन के समर्थन में 3 मार्च, से उपवास प्रारभ किया परंतु बाद में ब्रिटिश सरकार के वीरवाला को समर्थन दिए जाने के कारण गांधी जी काफी रुष्ट हुए पर जब सुधार सीमित की बात चली तो मुस्लमानों और दलित जातियों के प्रतिनिधि बने इस समिति अधिक सीटों की मांग की तो गांधी जी ने अपने आपको राजकोट के मामले से वापिस ले लिया।

रियासतों में आंदोलन काफी उग्र हो चुका था जैसे मैसूर, हैदराबाद, त्रावनकोर तथा उड़ीसा 1938 में मैसूर में यह आदोलन हिंसक हो उठा जब अप्रैल में कांग्रेस ने कानून निर्माण तथा उत्तरदायी सरकार के लिए मांग की सरदार पटेल ने मीरणा इस्माइल के साथ कांग्रेस को वैधानिक दर्जा देने का समझौता किया परन्तु वादा पूरा न होने पर कांग्रेस ने सितम्बर, 1948 से सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया।

उड़ीसा में आंदोलन उग्र सुधारवादी हो उठा क्योंकि इसे आम मुद्दों जैसे बेगारी भूमि पर अधिकार जगंल उत्पादो पर कर तथा जबरदसती मांगे गए तोहफों से जोड़ दिया गया वहां के अदिवासी लोगों ने राजा की सेना शक्ति में तीर और कमानों से मुकाबला किया, वहां के राजनीतिक एजेंट ने जनवरी 5, 1939 को जब राजसी महल के सामने भीड़ को नियत्रित करने के लिए चलाई तो उसे लोगों ने पत्थरों से मारकर वही ढेर कर दिया।

सबसे बड़ी रियासत हैदराबाद में यह आंदोलन हिंदू महासभा और आर्य समाज की कारवईयों के कारण साप्रंदायिक रंग ले गया अन्य रियासतो की तरह हैदराबाद में भी लोगों का अत्याधिक शोषण किया जाता था जिसका सबसे खास उदाहरण या वेथी (बेगारी या बंधुआ मजदूरी) था। परन्तु हिंदु महासभा ने इसे दूसरे ढंग से ढाल दिया क्योंकि हिंदू बहुत राज्य के शासक मुस्लिम थे (निजाम) सन् 1938 में कांग्रेस ने भी सत्याग्रह आंदोलन की शुरूआत की परन्तु गांधी जी के दबाव के कारण कांग्रेस ने इसे वापस ले लिया क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि कांग्रेस का नाम भी इस साप्रंदायिक आंदोलन के कारण बदनाम हो जाए।

अगस्त, 1938 में तत्कालीन त्रावनकोर दीवान सी.फी. रामास्वामी की निरकंशता के विरुद्ध त्रावनकोर स्टेटस् कांग्रेस ने सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया। अनेक विद्यार्थियों ने 'जत्था' (लोगों का समूह) में शामिल होने के लिए केरल के अनेक क्षेत्रों से त्रावनकोर के लिए कूच किया। इस आंदोलन में मजदूर श्रमिक वर्ग ने अग्रणी भूमिका निभाई। कृष्ण पिल्लई के नेतृत्व में अलप्पी जूट वर्क्स के श्रमिकों ने अक्तूबर, 1938 में हड़ताल की तथा न सिर्फ मजदूरी बढ़ाने की मांग की बल्कि सभी राजनीतिकबंदियों

की रिहाई तथा राज्य में लोगों की सरकार बनाने के लिए सभी लोगों को वोट डालने के अधिकार की भी मांग की। दीवान ने अलप्यी श्रमिकों को अलग-अलग करने के लिए कांग्रेस सत्याग्रहियों पर लगी बंदिशें कम कर दीं। गांधी जी तथा कांग्रेस हाई कमान ने दीवान से कुछ शर्तों पर सहमति लेकर इस सांकेतिक सत्याग्रह को वापिस ले लिया।

स्वतंत्रता पश्चात सरदार पटेल की कोशिशों से सभी रियासतों का (563 में से 434) भारत संघ में विलय कर लिया गया। केवल हैदराबाद, जूनागढ़ तथा कश्मीर ने लम्बे समय तक इस विलय का विरोध किया।